IJAER/March-April 2021 /Volume-10/Issue 5 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

''हिन्दी कविताओं में आदिवासी प्रतिरोध के स्वर''

विशेष सन्दर्भ – अरावली उद्घोष

डा. अनीता यादव
सह–आचार्य हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राजस्थान)

जब लघु पत्रिकाओं पर बात करते हैं तो अरावली उद्घोष पत्रिका का महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है। बी.पी. वर्मा ''पथिक'' के सम्पादन में उदयपुर से निकलने वाली यह पत्रिका बीस वर्षों से लगातार आदिवासी विमर्श कर रही हैं। हाशिये पर पड़े लोगो की आवाज उठाने में इसकी महती भूमिका है। आदिवासी जीवन से सम्बन्धित सभी पहलू इसके विचार बिन्दु बने हुए हैं।

स्वतन्त्र भारत की सबसे बड़ी विडम्बना रही है कि खनिज, वन और मानवशक्ति के रूप में जो आदिवासी क्षेत्र सबसे ज्यादा समृद्ध हैं, वे ही क्षेत्र इन दिनों गरीबी और शोषण के द्वीप बनते जा रहे हैं। देश की गलत विकास नीतियों और प्रक्रियाओं के कारण विकास शेष देश और शहरी लोगों का हो रहा है और उसके लिए अपने सब कुछ की कुर्बानी आदिवासी लोग दे रहे हैं। जिनकी कहीं भी कोई आवाज नहीं है। इनकी पीड़ाएं इनके दिलों में जन्म लेती है और वहीं दम भी तोड़ देती हैं। पत्तों को खाकर जिन्दा रहने वाले इसी समाज में रहते हैं। आदिवासी वहाँ रहते हैं जहाँ देश की महत्वपूर्ण खनिज सम्पदा है यही इनके दुर्भाग्य का कारण बन गयी है। जिन पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की नजरें लगी हैं। करोड़ों का मुनाफा कमाने के लिए दशकों से युद्ध चल रहा है। इनकी समस्याओं की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता। चाहे वे राजनेता हो या समाज सुधारक।

साहित्य भी इनके प्रति हमेशा उदासीन ही रहता आ रहा है। यही कारण है कि आदिवासी जनजीवन के यथार्थ को रेखांकित करने वाला साहित्य आज भी अत्यल्प है। आदिवासी साहित्य के लिखित रूप का विकास आधुनिक काल में हुआ। फलतः देश में एक आवाज उठ रही है, जिसे अब तक अनसुना किया जाता रहा है। इसका मूल कारण है कि आदिवासी के बीच आधुनिक शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार का होना। भारत के आजाद होने के पश्चात् भारत सरकार ने उन्हें मुख्य धारा में शामिल करने के लिए उनके विकास की ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया। आधुनिक शिक्षा का आलोक पाकर अनेक आदिवासी युवक पढ़ लिखकर आगे आये और आदिवासी साहित्य के विकास में योगदान दिया। परिणामतः साहित्य में आज प्रतिरोध के स्वर भी गुंजरित होने लगे हैं। हांलाकि गति धीमी है पर शुरूवात हो चुकी है।

आदिवासी जंगल पर आधारित व आश्रित रहते आये हैं। लेकिन जंगल के लगातार कटते व घटते चले जाने से या वन कानूनों के चलते इनकी रोजी रोटी जंगल नहीं दे पा रहा है सो मजबूरन ये समतल मैदानों में मजदूरी करते हैं या पहाड़ के आस–पास की उबड़–खाबड़ जमीन को जोतकर उपजाऊ बना लेते हैं। पड़ौस के गैर आदिवासी, बनिया और साहूकार येन केन प्रकारेण इनकी वह जमीन भी हासिल कर लेना चाहते हैं जिसे इन्होंने मेहनत करके उपजाऊ बनाई है। भ्रष्ट शासकीय अधिकारियों के चलते जमीन का किस तरह उलटफेर होता है, जमीन छीनकर अंजान संस्थाओं को दे दी जाती है। पटवारी के छल छद्म को सहन करते हैं, सेठों की बहियों में अंगूठा लगा ऊँची दर का ब्याज चुकाने के लिए अभिशप्त हैं। पटवारी, तहसीलदार और पुलिस महकमा इनको कभी मनुष्य के रूप में समझ ही नहीं सका। वे समझना भी नहीं चाहते हैं।

आज इन सब स्थितियों, षडयंत्रों और साजिशों को आदिवासी बखूबी समझने लगा है। उसका मौन मुखर, या मचलने लगा है फलतः प्रतिरोध और आक्रोश का भाव उसके मन में उत्पन्न होने लगा है क्योंकि सहने की भी एक सीमा होती है और जब सीमा का अतिक्रमण हो तो स्थिति घातक या विस्फोटक हो सकती है – इसी भाव को अभिव्यक्ति देती है– डा. गिरिजा शंकर मोदी की कविता 'भूल का दर्द' – मुझे अब तुम , मनुष्य न समझने की , भूल

मत करना। मेरे पुरखों ने , मनुष्य न होने की , भूल कर दी थी। उसने हिंसक औजार बना , हत्या करने का संस्कार , खुद में न डाला था , वे नतमस्तक रहे थे। बड़े अहिंसक लोग थे वे, अब मे अपनी मृत्यु के बहुत पहले , मर जाना नहीं चाहता। होसला मेरा भी । बुलन्द है जीने का , तुम्हारी तरह , अब में , अपने पुरखों की तरह , शिकार न होऊँगा ,तुम बहेलियों के हाथों (1)।

विकास के नाम पर आदिवासियों के साथ छलावा हुआ। विकास की इस निर्मम प्रक्रिया ने स्थानीय आदिवासी के विकास के सब दरवाजे बन्द करके उनको दर–दर भटकने और अभावों से ग्रस्त जिन्दगी जीने के लिए मजबूर किया। विस्थापन, आदिवासियों को केवल उनकी जड़ों से नहीं काटता, उनकी रोजी–रोटी का साधन जो कि जंगल और जमीन है, ही नहीं छीनता, बल्कि उन्हें पलायन करने के लिए मजबूर करता है। पलायन का सीधा अर्थ है – अपनी संस्कृति और भाषा गँवाना। वैश्वीकरण न सिर्फ इस विस्थापन को और बढ़ा रहा है बल्कि उन्हें पलायन पर मजबूर कर रहा है। उनके प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा भी कर रहा है। दरअसल जो विकास नीति है रोजगारोन्मुखी न होकर पूंजीन्मुखी है, कल्याणोन्मुखी नहीं, शोषणन्मुखी और मुनाफोन्मुखी है। इसलिए आदिवासी का विकास न होकर विस्थापन का विकास अवश्य हुआ है।

प्राकृतिक प्रकोप के रूप में सूखा इनकी जान को ही सुखा देता है। पुलिस से पिटते, साहूकार से लुटते, और प्रशासन से ठगे जाते, मजबूर आदिवासी जब दबाव को बर्दाश्त नहीं कर पाते तब प्रतिरोध और प्रतिशोध में महकमें के नुमाइन्दे का सिर गर्दन से अलग कर देते हैं। आदिवासी के इस दबाव, गुस्सा और प्रतिरोध को डॉ. रीता हमेला 'आराधना' की कविता 'करतल ध्वनि' में देखा जा सकता है दर्द उठता है , जिस्म में , छवि टूटने के साथ , आन्दोलित होता , मन और मस्तिष्क मरोड़ती पूरी देह , जन्म लेती है रण चिन्गारी । आँखों के सामने खुलने लगते हैं। अपठित पृष्ठ , यहीं से शुरू होता है आदर्शो के टूटने का सिलसिला , दमन–सहन और विद्रोह के तिराहे पर , दिशाहीन वो भटकता है , अब वो कुछ भी बन सकता है। लूटा पिटा मजबूर मजदूर , रिश्वत खोर प्रधान , वगैरत इंसान , या आतंकवादी लेकिन वह नहीं बन पाता जिसके लिए उसने विद्यालय में रखा था कदम, जिसका निर्माण कर रही थी शिक्षा (2)।

अब आदिवासी नई विचारधाराओं और क्रान्तियों के परिप्रेक्ष्य में अपनी नयी पुरानी स्थितियों को जाँचने परखने लगा है। उनमें अपने होने न होने का एहसास जगा है, अपने साथ हुए भेदभाव और अन्याय का बोध भी जागृत हुआ है। फलतः वह अभाव, अत्याचार, आतंक, उत्पीड़न, शोषण, दमन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए तत्पर है। सब कुछ नष्ट कर देना चाहता है। डटकर अन्याय का विरोध करना चाहता है। क्रान्ति चाहता है – रमणिका गुप्ता की कविता – ''दृष्टिकोण बदलना होगा'' – ''मैं क्रान्ति चाहता हूँ । तो तुम हिंसा कहते हो , मैं अन्याय का विरोध करता हूँ । उसका सर कुचलता हूँ। जब मै तीर चलाता हूँ। तो तुम नक्सलवादी कहते हैं। '' वे बोलते नहीं थे '' अब वे बोलने लगे हैं। भूख को रोटी और मार को लाठी, कहना सीख गये है। वे माँगने लगे हैं हिसाब , सड़क के नीचे कल–कल करती अपनी नदी का , रिक्शा में ढोते हुए लोगों के फेफड़ों से धौंकनी–सी चलती सांसों का'' (3)।

विस्थापन की पीड़ा बहुत गहरी और तीखी है। विस्थापन के नाम पर आदिवासियों को समूल नष्ट किया जा रहा है। जड़ों के अभाव में कोई जाति पनप नहीं सकती। इस तथ्य को आज आदिवासी भली भाँति समझ रहा है और एकजुट होकर अपने बजूद, अपनी पहचान, अपनी संस्कृति, अपने अस्तित्व को बचाने की जद्दोजहद कर रहा है। यहाँ तक कि हथियार उठाने के लिए भी उतारू हो गया है। डॉ गिरिजा शंकर मोदी की कविता ''खबरें'' इसी भाव से ओत–प्रोत दिखायी देती है – ''हथियार उठा लिया है, लोगों ने साठ साल की घुटन भरी जिन्दगी के खिलाफ , नक्सलबाड़ी से छत्तीसगढ़ तक की खबरें , सुर्खियों में कुछ यों ही नहीं हैं । और यह देश है कि , लूटने वालों के खिलाफ मोर्चा खड़ा न कर , लुटने वालों की जमात पर गोलियाँ बरसा रहा है , देश कारणों को खत्म करना छोड़, खुद को ही खत्म करने में लगा है'' (4)।

वैसे किसी वर्ग विशेष पर अन्याय दस वर्ष, पच्चीस वर्ष, पच्चास वर्ष चल सकता है लेकिन अनन्तकालीन कदापि नहीं हो सकता। आदिवासी पीड़ा शनैः–शनैः लावे के रूप में इकट्ठी हो रही है। किसी भी दिन ज्वालामुखी की शक्ल में विस्फोटित हो सकती है क्योंकि आज आदिवासी सजग, चैतन्य और जागरूक हो गया है तथा अधिकार बोध और अस्तित्व बोध से युक्त है। उसमें प्रतिरोध और प्रतिशोध है। वह समझ रहा है, अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी, अपना मुकाम खुद हासिल करना होगा। अपने आत्म सम्मान को हर संभव प्रयास से बचाना होगा।

उत्पीड़ित जनों का भविष्य नियत करने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि भविष्य संघर्षशील कौमों का होता है। धीमी गति से ही सही पर मुक्ति का संघर्ष प्रारम्भ हो चुका है। अब समय आ गया है कि वह अपने भोगे हुए दर्द की प्रतिक्रिया को सम्प्रेषित कर रहा है। उसका बोध साहित्य में झलक रहा है। उसमें आक्रोश है, प्रतिरोध गुंजरित हो रहा है। वह दूसरों को ललकारने लगा है। इससे स्पष्ट होता है आदिवासी में एक नये तेवर का आगाज तो हुआ ही है, दूसरों के द्वारा अपने सुख–दुःख की चर्चा के बजाय अपना दुःख सुख स्वयं व्यक्त करने की चेतना से युक्त हैं। सदियों की चुप्पी तोड़कर सारी सीमायें पार करने की चेतना भी उनमें जगी है। अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपना इतिहास, अपना भूगोल सब जानने और सबकी पड़ताल करने और उसे जता देने की चेतना के साथ वे बोल उठे हैं। प्रभु नारायण मीणा की कविता ''ये किसने आग लगाई'' इसी भाव को परिपुष्ट करती हैं – ''है तेरा अधिकार औरों को भी देने की सोचते है ,
जो किसी भी तरह पाने के अधिकारी नहीं फिर भी भौकते हैं। अपनी रक्षा में कमान खींच ले , तीर पड़ा न रहे तूणीर में , किसने आग लगायी तेरी छान में , राजनेता स्वार्थ की खातिर देते जातिवाद का नारा , लाभ पूरा ले आरक्षण का दे अधिकारों पर पहरा । शोषण की तू फाड़ दे चादर क्यों सो रहा अज्ञान में , ये किसने आग लगायी तेरी छान में'' (5)।

इसी प्रकार अशोक सिंह की कविता तीर को कलम बनाने दो – ''बहुत कह चुके हो तुम, अब हमें भी कुछ कहने दो , तीर को कलम बनाने दो, अब तक तो तुम कहते रहे , हम सुनते रहे, बस सुनते रहे, मन ही मन गुनते रहे , अब तुम सुनो, हमें अपनी कहने दो, राज हमारा, शासन तुम्हारा, लोक हमारा, तंत्र तुम्हारा, बंद करो यह नाटक सारा , हम उन्मुक्त हवा है, जिधर बहें, बहने दो, तीर को कलम बनाने दो''(6)।

आज आदिवासी अपनी बागडोर अपने ही हाथों में खींच लेना चाहते हैं अपना नेतृत्व स्वयं करने की आंकाक्षा करते हुए परिवर्तन का जयघोष करने के लिए अग्रसर है – डॉ हेमराज मीणा ''दिवाकर'' की कविता ''रच दूँगा नया बसन्त'' इसी भाव से ओत–प्रोत है। कविता की कुछ पंक्तियाँ – इन टूटी थूनियों के सहारे , कब तक जिओगे , एक पक्का खंभा , लगाने दो , जो पोला , है, धुन लगा है , वह क्या झेलेगा , मजबूत हाथों में लगाम आने दो , वक्त की माँग समझो , पाप सने हाथों से सत्ता छीनों , किससे डर है ? परिवर्तन हुँकार भरो , जयघोष होने दो , रच दूँगा एक नया बसन्त , आम्र बौर आने दो (7)।

आदिवासी की बदहाली के खिलाफ प्रतिरोध के स्वर कुछ कविताओं जैसे, 'लोकतंत्र', 'जाग आदिवासी', 'कब्रगाह', 'आसाम से लौटकर 'हड़िया सोरेन, 'आदिवासी का बोध', 'आदिवासी अस्मिता', 'जागृति गीत', 'तुम क्या समझते हो' झारखंड का सच, आदि में गुंजरित होते प्रतीत होते हैं। जो इन मूक लोगों को आवाज की ताकत का संदेश देती हैं। लोकतंत्र में आवाज ही हक और समानता पाने का महत्वपूर्ण माध्यम है ।

जब–जब उत्पीड़न व दमन बढ़ता है इसकी प्रतिक्रिया में प्रतिरोध भी बढ़ता है । भोले आदिवासियों का मौन एक दिन प्रखर रूप में मचलेगा । जब आदिवासियों का तीर फालिया और टकिया चलेगा तो लगता है, सारी सीमाये टूट जायेगी। आखिर सहने की, भोगने की भी एक इन्तहा तो होती ही है । इतिहास गवाह है कि अबोले, शांत व्यक्ति का क्रोध बहुत खतरनाक होता है । निर्मला पुतुल की कविता 'धीरे–धीरे' इसी भाव को व्यक्त करती है – ''अक्सर चुप रहने वाला आदमी , कभी न कभी बोलेगा , जरूर सिर उठाकर , चुप्पी टूटेगी एक दिन धीरे–धीरे , सख्त होगें उसके इरादे । और तनेगी मुट्ठियां आकाश में व्यवस्था के खिलाफ , भीतर–भीतर ईजाद करते , कई–कई खतरनाक शस्त्र , धीरे–धीरे पुख्ता होगा हमारा विश्वास , अविश्वास के विरुद्ध मोर्चा बंदी कर , लगातार लड़ते हुए धीरे–धीरे खुलेंगे सभी बंद दरवाजे। धीरे–धीरे उठेगा आखिरी पर्दा और दिखेगा । एक दिन सब कुछ साफ–साफ , नाटक के पीछे चल रहा नाटक और उसके पात्र के असली चेहरे , कुछ पंक्तियां एक खुला पत्र – अपने झारखण्डी भाईयों के नाम – यह वक्त है, बहुत कुछ कहने सुनने और करने, गुनने का भी , कहो और पूरी ताकत से कहो जो कहना चाहते हो तुम , वर्ना पछताओगे एक दिन , बहुत कुछ बोलना चाहकर , कुछ न बोल पाने का दर्द भोगते'' (8)।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि आदिवासी मुक्ति का सपना तभी साकार होगा जब वे अपनी समस्याएं स्वयं सुलझायें और अपना नेतृत्व स्वयं करें । आत्मविश्वासी हो, स्वावलम्बी बने, तथा अपने प्रश्नों के निराकरण के लिए किसी धर्म या पंथ पर निर्भर न रहें । मुक्ति का प्रयास इन्हें खुद खड़ा करना होगा। बिना आपसी एकता के अलग–अलग बिखरा सर्वहारा वर्ग कभी बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता । अपने वर्ग की मुक्ति के लिए उन्हें तमाम अलगाववादी, भटकाववादी, षडयन्त्रों को समझकर एकता स्थापित करनी होगी एवं सामूहिक संघर्ष के द्वारा

अपने अधिकारों को प्राप्त करना होगा । सामाजिक संरचना या व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन करना होगा । अपने शोषक वर्ग शत्रु को शोषित को पहचानना होगा, उनके विरुद्ध एकता स्थापित करनी होगी ।

अंत में हरिचरण अहरवार के शब्दों में इतना ही – ये मत भूलों कि हमें याद नहीं है , शहर का रास्ता , किसी दिन बाढ़ आयेगी विचारों की हमारे , तो सब कुछ हमारा होगा। तुम क्या समझते हो ?

सन्दर्भ सूची –

1. अरावली उद्घोष अंक 84, पृ. 52 जून 2009
2. अरावली उद्घोष कविता अंक 81, पृ. 19 सितम्बर 2008
3. अरावली उद्घोष अंक 85, पृ. 14
4. अरावली उद्घोष अंक 85, पृ. 23
5. अरावली उद्घोष कविता अंक 81, पृ. 25
6. अरावली उद्घोष अंक 89, पृ. 5
7. अरावली उद्घोष अंक 89, पृ. 23
8. निर्मला पुतुल अपने घर की तलाश पृ. 57, 58, 59